शास्त्रार्थ महारथी पं. गणपति शर्मा: जिन्होंने शास्त्रार्थ के माध्यम से वेदों को घर घर तक पहुँचाया

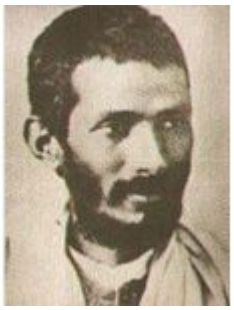

राजस्थान का चुरू नगर सौभाग्यशाली है, जहाँ के निवासी श्री भानीराम वैद्य जी के यहाँ सन् १८७३ ईस्वी को एक बालक ने जन्म लिया। श्री भानीराम जी वैद्य पाराशर गौत्र के पारिख ब्राह्मण जाति से सम्बन्ध रखते थे। उनके यहाँ जन्मे बालक को ही आगे चलकर पंडित गणपति शर्मा के नाम से जाना गया। पंडित गणपति जी के पिताजी ईश्वर में दृढ़ विशवास रखने के कारण उसके सच्चे भक्त थे तथा परमपिता के सच्चे भक्त होने के कारण प्रभु की निकटता पाने के लिए निरंतर उपासना करते रहते थे। पिता का गुण आज्ञाकारी पुत्र में न आये ऐसा तो हो ही नहीं सकता, इस कारण पंडित गणपति शर्मा जी में भी प्रभु उपासना का यह गुण सदा ही दिखाई देता रहा। यहाँ यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आपके जन्म का यह वर्ष वास्तव में वह वर्ष था, जिस वर्ष स्वामी दयानंद सरस्वती जी का देहांत हुआ था। स्वामी दयानंद जी का नाम वेद वाले पंडित के रूप में देश भर में प्रसिद्द हो चुका था तथा लोग उनके विचारों का लोहा मानते हुए उनके अनुगामी बन रहे थे। इस सब का प्रभाव भी जन्म से ही इस नवजात शिशु पर अवश्य ही पडा होगा तथा बाल्यकाल में स्वामी जी सम्बन्धी चर्चाओं ने भी उनके ह्रदय में धार्मिक क्रान्ति पैदा की ही होगी।

पंडित जी की शिक्षाकाल का मुख्य भाग कानपुर व काशी आदि स्थानों में व्यतीत हुआ तथा यहाँ से ही उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। इस सब का परिणाम था कि बाईस वर्ष की अवस्था में आते आते संस्कृत व्याकरण एवं दर्शन ग्रन्थों का आपने सांगोपांग अध्ययन कर लिया। यह शिक्षा पूर्ण कर आप अपने जन्म स्थान अर्थात् चुरू नगर में लौट आये। इन दिनों में ही पंडित कालूराम जी राजस्थान के एक बड़े भाग में आर्य समाज तथा वैदिक धर्म के प्रचार में लगे हुए थे। ऐसे में आप उनके विचारों से प्रभावित न होते , यह तो संभव ही न था। अत : आप उनके विचारों से प्रभावित होकर उनके संपर्क में आये। बस फिर क्या था शीघ्र ही आप ऋषि दयानंद सरस्वती जी की सेना में एक सैनिक के रूप में आ खड़े हुए और आर्य समाज के नियमित सदस्य बन गए। यह तो कहावत है कि नया नया मुल्ला ऊँची बांग देता है, अत : पंडित जी भी नए ही आर्य समाज में आने के कारण उन्होंने खूब स्वाध्याय किया, ऋषि कृत ग्रन्थों को पढ़ा और समझा तथा शीघ्र ही आर्य समाज के प्रचार व प्रसार के कार्य में लग गए।

जब आप आर्य समाज में आये ही थे कि गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का वार्षिक उत्सव सन् १९०५ ईस्वी में

हुआ। आप भी इस उत्सव में जाकर सम्मिलित हुए। इस उत्सव में देश भर से ऋषि भक्त आये हुए थे, इन श्रोताओं की संख्या लगभग 15-२० हजार की रही होगी। इस भारी जनसमूह के सम्मुख आपके वैदिक विषयों पर कुछ प्रवचन हुए। इन प्रवचनों का श्रोताओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आपकी धाक न केवल श्रोताओं पर ही पड़ी अपितु आर्य समाज के विद्वान् भी आपसे प्रभावित हुए बिना न रहे। परिणाम स्वरूप आर्य जनता तथा इसके मार्ग दर्शकों का ध्यान आपकी और गया। सबने यह निष्कर्ष निकाला की इस नौजवान से आर्य समाज को बहुत आशाएं हो सकती हैं क्योंकि इनके व्याख्यानों में दम है, जो आर्य समाज के लिए कभी अत्यधिक आगे ले जाने का कारण हो सकता है।

आपमें गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में हुए आपके व्याख्यानों से ऐसी लगन लगी कि आप आर्य समाज के लिए नियमित रूप से बोलने लगे। पंडित धर्मपाल जी ने उत्सव के उपरांत अपने एक लेख में पंडित गणपति शर्मा जी की खूब प्रशंसा की तथा यहां तक कह गये कि पंडित जी कि प्रशंसा के लिए उनके पास शब्दों का अभाव है। (यह पंडित धर्मपाल जी वही व्यक्ति थे, जो पहले मियां अब्दुल गफ्फूर के नाम से जाने जाते थे किन्तु शुद्ध होकर वैदिक धर्मी बन गये थे।) उन्होंने पाठकों को आगे सम्बोधन करते हुए कहा कि पं. गणपति शर्मा की वाणी में सरस्वती निवास करती है, इस तेजस्वी वाणी को तो स्वयं सुनकर ही जाना जा सकता है, इसकी व्याख्या के लिए तो कोई शब्द बना ही नहीं।

पंडित जी की वाणी की जहां तक चर्चा करें तो हम कह सकते हैं कि उनकि आवाज अत्यधिक ऊँची तथा तेजस्वी होने के कारण वह १५-२० हजार की संख्या में उपस्थित जन समुदाय को बड़ी सरलता के तथा बिना लाउडस्पीकर के अपनी बात रखने की क्षमता रखते थे और वह भी चार-पांच घंटे तक, यह धाराप्रवाह तथा बिना माइक के व्याख्यान उन्हें बहुत आगे ले जाता है। श्रोताओं को भी आपके व्याख्यानों में ऐसा रस मिलता था कि वह उनके व्याख्यानों से न तो अकते थे और न ही कभी थकते थे, अपितु बड़ा आनंद लेते हुए सुनते थे। उनके महान् व्यक्तित्व के कारण श्रोता सदा उनकी और आकर्षित होते रहते थे।

पण्डित जी के महान् व्यक्तित्व तथा उच्च विचारों के कारण आर्यजनों को उनके प्रति इतना आकर्षण हो गया था कि आर्य जन उनकी और खींचे चले आते थे, उनके प्रति आदर तथा श्रद्धा रखते थे तथा पंडित जी के शब्दों को अपने ह्रदय पटल पर अंकित कर लेते थे।

स्वामी श्रद्धानंद सरसवती भी उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्हें कहना पड़ा कि पंडित जी की प्रभावशाली व्याख्यान कला ही नहीं अपितु उनका पवित्र आचरण , सेवाभाव तथा उनका उच्च चरित्र ही था, जिसके कारण लोग उनके प्रति सम्मान रखते थे। इस सब का यह पारिणाम हुआ कि उनसे शास्त्रार्थ में पराजित होने वाले विरोधी विद्वान् भी उनके प्रशंसक बन जाते थे ।

सन् 1904 ईस्वी में पसरूर नगर(वर्तमान पाकिस्तान) में पादरी ब्राण्डन द्वारा आयोजित सर्व धर्म सम्मेलन में आर्यसमाज की ओर से इस कार्य में पं. गणपति शर्मा सम्मलित हुए, पंडित जी की विद्वता एवं सद्व्यवहार का पादरी पर ऐसा प्रभाव पडा कि भविष्य में होने वाले आयोजनों में पंडित जी की ही edकरने लगे।

इसी वर्षा अर्थात् इस सन् 1904 ईस्वी में आपके पिता तथा आपकी पत्नी का देहांत हो गया। इस

दु :खपूर्ण घड़ी में भी आप ने आंतिम संस्कार कर धर्मप्रचार का कुरुक्षेत्र के सूर्यग्रहण पर मेला में आ डटे तथा यहाँ पर आपके प्रचार का ऐसा प्रभाव रहा कि आपका प्रभाव अन्य मतावलम्बियों से भी कहीं अधिक रहा। यह आर्य समाज की ही शिक्षाओं का परिणाम था।

जिस प्रकार स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपना सब कुछ गुरुकुल कांगड़ी को देकर सर्वमेध यज्ञ किया था, उस प्रकार ही आपने भी अपनी पत्नी के देहावसान पर अपनी पत्नी के सब आभूषण गुरुकुल कांगड़ी को भेंट कर दिए। यह आपकी त्यागवृत्ति का एक उत्तम उदाहरण है।

पंडित जी ने अपने जीवनकाल में अनेक किये। यह शास्त्रार्थ न केवल मुसलमानों से ही अपितु ईसाई और सिक्खों से भी किये। इन शास्त्रार्थों के द्वारा आपने वैदिक मान्यताओं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। 2 सितम्बर, 1906 को पं. गणपति शर्मा ने पादरी जानसन से शास्त्रार्थ किया। यह शास्त्रार्थ श्रीनगर (कश्मीर) में महाराजा प्रताप सिंह जम्मू कश्मीर की अध्यक्षता में हुआ। पादरी जानसन संस्कृत भाषा एवं दर्शनों का विद्वान होने के कारण राज्य के पण्डितों को चुनौती दे रहा था किन्तु कोई सामने न आ रहा था अंत में महाराजा के कहने पर पण्डित गणपति शर्मा से शास्त्रार्थ हुआ। अगले दिन 13 सितम्बर को भी शास्त्रार्थ जारी रहना था परन्तु पादरी जानसन में साहस नहीं रहा और वह चुपचाप खिसक गये। पंडित जी को विजयी घोषित किया गया, जिससे उनका यश और कीर्ति पूरे देश में फैल गई। इस अवसर पर काश्मीरी पंडितों ने अपनी अज्ञानता पर आंसू बहाए।

पंडित जी वैदिक सिद्धांतों की रक्षा के लिए अपनों से भी उलझने को तैयार रहते थे। ऐसा ही वृक्षों में जीव का एक विषय आया और आपने तत्काल वृक्षों में जीवात्मा होता है, इस प्रश्न को लेकर पंडित जी का आर्यजगत् के ही विद्वान्, शास्त्रार्थ महारथी और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती से 5 अप्रैल सन् 1912 को गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में शास्त्रार्थ हुआ । दोनों विद्वानों में परस्पर मैत्री सम्बन्ध थे। यद्यपि इस शास्त्रार्थ में हार-जीत का निर्णय नहीं हुआ तो भी इन दोनों की युक्तियों-तर्कों का श्रोताओं को अच्छा लाभ हुआ।

पंडित जी अपनी पुस्तकों का शतक लगाने की इच्छा रखते थे, इस निमित्त उन्होंने मस्जिद मोठ में मुद्रणालय भी स्थापित किया किन्तु अपनी व्यस्तताओं तथा लघु जीवन (मात्र ३९ वर्ष) के कारण इस उद्देश्य को पूर्ण न कर सके , बस केवल एक पुस्तक ही प्रकाशित कर पाए, इस पुस्तक का नाम 'ईश्वर भक्ति विषयक व्याख्यान।'है। यदि उनका जीवन कुछ लंबा होता और वह अपनी शतक की इच्छा को पूर्ण कर पाते तो इससे आर्य जगत् को अत्यधिक लाभ होता।

प्रचार करते हुए आपने कभी किसी भी बाधा को कार्य में अवरोध नहीं खड़ा करने दिया, यहाँ तक कि अत्यधिक रुग्ण होने पर जब ताप ने १०३ डिग्री तक को छू लिया तो भी आप व्याख्यान देते रहे। विश्राम की तो आप कभी इच्छा ही नहीं रखते थे। यदि आप अपने स्वास्थ्य का कुछ ध्यान रखते तो संभव था कि आपका जीवन कुछ अधिक लंम्बा होता और आप आर्य समाज की कुछ और अधिक समय के लिए सेवा कर पाते। किन्तु कभी विश्राम न करने की इच्छा आर्य समाज के लिए घातक हुई ओर आप मात्र ३९ वर्ष की आयु में 27 जून सन् 1912 को इस नश्वर शरीर को छोड़ कर चल बसे। आप ने कभी भी अपने जीवन में किसी प्रकार की भी कोई ऐषणा नहीं आने दी। न तो आपको पुत्रेष्णा थी, न वित्तेष्णा और न ही

लोकेष्णा। आपने इन ऐष्णाओं से उठकर निष्काम भाव से आर्य समाज की सेवा की।

डा. अशोक आर्य
पाकेट १ प्लाट ६१ रामप्रस्थ ग्रीन से.७ वैशाली
२०१०१२ गाजियाबाद उ.प्र.भारत
चलभाष ९३५४८४५४२६
E mail ashokarya1944@rediffmail.com